गाँधीवादी कला-दृष्टि मूलतः आकाश-दृष्टि थी।

गाँधी और गाँधीवाद की कला-दृष्टि

– जगदीश गुप्त

कोई भी लोक प्रिय विचारधारा समग्रता को अपने भीतर समाहित करने का उपक्रम करती है परन्तु उसकी निजी प्रवृत्ति कुछ दिशाओं को प्रमुख और कुछ को गौण बना ही देती है। गाँधी जी के सामने एक पराधीन देश को स्वाभिमान पूर्वक स्वतन्त्र बनाने का ऐतिहासिक दायित्व था जिसके लिए उन्होंने स्वप्रेरित नीति का प्रयोगात्मक आधार लिया। उनकी निष्ठा और संकल्प-शक्ति इतनी गहरी थी कि वे अपनी अहिंसापरक नीति से कभी विचलित नहीं हुए। भारतवर्ष की जन चेतना को उन्होंने जितनी विशाल आत्मीयता दी वह उनके युग के किसी भी नेता से संभव न हुई। उनकी दूर-दृष्टि अत्याचारी शासन की कुटिल नीति से उपजे प्रतिपक्षी स्वभाव को उतनी ही गहराई से जानती थी जितनी अपने देश की सांस्कृतिक विरासत को। उन्हें अपनी अन्तरात्मा को प्रेरित करने वाले ईश्वर पर उतना ही विश्वास था जितना किसी समर्पित भक्त को होता है। नरसी और तुलसीदास, व्यास और वाल्मीकि से अधिक उनकी चेतना से जुड़े थे। टालस्टाय और ऐनी बेसन्ट उनकी विचारधारा को नयी दृष्टि देनें में प्रेरक सिद्ध हुए। रस्किन का भी उनके ऊपर पर्याप्त प्रभाव रहा। किन्तु उनकी जीवन-दर्शन अन्ततः गीता से ही निर्धारित होता रहा। गीता की जो व्याख्या तिलक ने अपने गीता-रहस्य में कर दी थी वह स्वातन्त्र-संघर्ष की सबसे अधिक संवाहिका बनी। गीता ने ही गाँधी जी को कर्मयोगी बनाया। 'योगः कर्मसु कौशलम्' द्वारा एक विराट फलक पर देश का चित्र रचने की जो योजना उन्होंने बनायी वह सारे देश को रचनात्मक प्रेरणा दे गयी। न जाने कितने साहित्यकारों तथा कलाकारों ने उनसे प्रेरित होकर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की और अपने को उनके साथ भावनात्मक स्तर पर सहभागी एवं अनुभागी मानने में गौरव का अनुभव किया। शान्ति निकेतन में रवीन्द्रनाथ ने उनके लिए जो कलात्मक कुटी बनायी वह उनके आदर्शों के अनुरूप सिद्ध नहीं हुई क्यों कि एक कवि-कलाकार की मर्म-भाषा उनकी कर्म-भाषा नहीं बन सकी। वे ऐसी कला के पक्षधर थे जो जीवन की व्यवहारिक उपयोगिता से जुड़ी हो, केवल कला-कक्ष तक जिसकी व्याप्ति न हो। अपनी कुटियों में टंगे चित्र उन्होंने उतार कर एक किनारे रख दिये क्योंकि वे उनके ध्यान में बाधक लगते थे। उनकी जीवन-कला, कला-वस्तुओं से ऊपर थी। उनकी संगति 'एकला चलो रे' से विडम्बनात्मक रूप से ही जुड़ सकी।

गुरूदेव जब प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर सूर्योदय का दृश्य देखने में आत्म विभोर हो उठे तो गांधी जी उनका साथ न दे सके। पूछने पर उन्होंने कहा जब इस देश का बच्चा-बच्चा सूरज की तरह दीप्तमान हो जायेगा तभी मुझे सुख होगा। केवल सूर्योदय देखकर अभिभूत नहीं हो पाता। कदाचित् इसीलिए गांधी-दर्शन में कला के लिए कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहा। गांधीवाद भी उसे विकसित करने में कृत-संकल्प नहीं हुआ। 'गान्धियन ईस्थटिक्स' पर कोई पुस्तक मिल जाय तो उसे अपवाद ही माना जायेगा। जन-भावना प्रबल होती तो हिन्दी और गुजराती में कला-साहित्य पहले लिखा जाता तब अंग्रेजी में पहुँचता, पर मेरी जानकारी में ऐसा हुआ नहीं। गांधीवाद ने मार्क्सवाद से भी कम कला-साहित्य को प्रेरित किया। कला की सूक्ष्मताओं में जाने के लिए उपयोगितावाद जीवन-दृष्टि प्रायः ओछी पड़ जाती है। उसके लिए केवल गीता के द्वारिकावासी कृष्ण पर्याप्त नहीं होते। वृन्दावन और मथुरा के कृष्ण की भी अनिवार्य आवश्यकता होती है। आश्चर्य है कि गांधी जी ने नरसी की कृष्ण भक्ति को राम-भक्ति के मर्यादावादी संस्कारों से ही देख पाया। उनके युग की वही आवश्यकता थी। उनके नाम में 'मोहनदास' गौण रह गया 'करमचन्द' प्रधान होता गया। अन्त में 'गाँधी' शब्द ने दोनों को ही गौण बना दिया। एक तपस्वी की तरह गांधी जी ने अपने विचारों को भी संयम सिखा दिया।

कला उनके लिए कभी प्राथमिकता नहीं पा सकी। वे अपने व्यक्तित्व से कला-दृष्टि को ही प्रश्नांकित कर गये पर उस पर भी गहराई से विचार नहीं हो पाया। इतना अवश्य है कि गुजराती होते हुए भी कला-कर्म को व्यापार से नीचे नहीं मानते थे। कला के प्रति उनका सद्भाव बंगाल में नंदलाल बोस को मिला और गुजरात में वहाँ के कला गुरू रविशंकर रावल को। उनके शिष्य कनु देसाई पर भी गांधी जी का प्रभाव पड़ा। जैसे बंगाल से परवर्ती चित्रकार-मूर्तिकार सुधीर खास्तगीर पर स्पष्ट दिखायी देता है। कांग्रेस के अधिवेशनों ने ग्राम-कला एवं लोक-कला को विशेष प्रश्रय दिया। शास्त्रीय कला या नागर-कला को गांधीवाद ने विशेष महत्व नहीं दिया। किसान-मजदूर में किसान गांधी जी के ज्यादा करीब दिखायी देता है। गांधीवाद संघर्ष के स्थान पर समन्वय और हृदय परिर्वतन में विश्वास करता है जबकि मार्क्सवाद द्वन्द्व और हिंसात्मक संघर्ष को जायज समझता है। गांधीवाद में अहिंसा धुरी की तरह है जिस पर सब कुछ टिका रहता है। सत्याग्रह भी अहिंसक रूप में ही मान्य है। सत्य की उपलब्धि के लिए भी गांधी जी अहिंसा को ही आधार मानते थे जबकि सत्य में सब कुछ आ जाता है। गांधी का मानववाद इसीलिए विदेशों की परिभाषाओं से नापा नहीं जा सकता। कला के संदर्भ में भी उनकी मानववादी दृष्टि वैष्णव संस्कारों से अनुप्रेरित रही है। 'हरिजन'

शब्द उन्हें इस देश की मानसिकता के अनुरूप ग्राह्य हुआ और उनकी निजी भावना भी उसी के अनुरूप विकसित हुई।

गांधीवाद ने कला की कोई नयी परिभाषा नहीं रची। शिक्षा के सामान्य चिन्तन में बेसिक आवश्यकता की तरह कला को भी आधारभूत माना गया है पर शिल्प और कला में अन्तर करने की कोई आवश्यकता गांधीवादी विचारकों में दिखायी नहीं देती। उनके कला-दर्शन को कोई रूप दिया जाय तो यही बात सबसे प्रमुख सिद्ध होगी कि कला और शिल्प में अन्तर करना मूलतः अनावश्यक और तत्वतः अनुचित है। योरोप में अति आधुनिक आन्दोलनों में 'बाउ-हाउ' जैसे आन्दोलन भी ऐसा ही विचार रखते हैं यद्यपि इस भूमि तक पहुँचने में उनका रास्ता दूसरा रहा है। 'आर्ट ऐण्ड क्रैफ्ट' की एकात्मता इस युग का धर्म प्रतीत होता है। इस दृष्टि से गांधीवाद पिछड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता भले ही यान्त्रिकता से उसका मेल नहीं रहा। यन्त्र का उपयोग करते हुए भी वे ऐसा वातावरण अमानुषिक समझते थे जिसमें स्वार्थवश मनुष्य संवेदना हीन हो जाय या उसकी ओर बढ़ने लगे। मानवीय संवेदना गांधीवाद को कला से उत्तरोत्तर जोड़ने की क्षमता रखती है पर उसका इस दिशा में अभी तक विकास नहीं हुआ। गांधी-दर्शन में, मार्क्सवाद की स्पर्धा करते हुए आर्थिक सम्बन्धों को वरीयता दी जा रही है। भावानात्मक सम्बन्धों को गौण स्थान मिल रहा है जबकि इसी भूमि पर गाँधीवाद मार्क्सवाद से ऊपर उठ सकता है।

राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने राष्ट्रपिता की आदर्शवादी दृष्टि को 'साकेत' में इस प्रकार शब्द-बद्ध किया है।

हो रहा है जहाँ सो हो रहा।
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा।
किन्तु होना चाहिए जब जो जहाँ।
व्यक्त करती है कला उसको यहाँ।

प्रारंभिक कृति 'भारत-भारती' में कला-गौरव के अतीत का गुणगान करते हुए अजन्ता, बाघ आदि गुफाओं का सौन्दर्य सराहा गया है जिससे गाँधी जी पूरी तरह सहमत थे। लोक-मानस के परिर्वतन में कला और साहित्य असाधारण भूमिका रखते थे, यह बात कभी विवादास्पद नहीं हुई। सर्वोदय में विनोवा भावे ने गांधी-दर्शन को ही मूलतः अपनाया है पर औपनिषदिक आधार देकर उसे विश्वव्यापी छवि देने की अतिरिक्त चेष्टा की गयी है, इसमें संदेह नहीं। नेहरू ने मार्क्सवाद को खुला प्रश्रय दिया पर सर्वोदय-संपृक्त गाँधीवाद को अपने देश के लिए भी प्रेरक नहीं मानना। फलतः उसकी कला-दृष्टि भी कुंठित हो गयी। नेहरू और गांधी के देश को ही खंडित होते नहीं देखा वरन् सांस्कृतिक चेतना को भी विखंडित होते हुए देखा।

सांस्कृतिक उन्मूलन से भी कला की गति असहज हो गयी। गांधीवाद ने उसे रोकने की कोई चेष्टा नहीं की। जब खादी की शुद्ध प्रश्नांकित हो गयी तो कला की बात कौन कहे। विदेशी वस्त्रों का तिरस्कार विडम्बना बन कर विदेशी विचारों का स्वीकार बन गया है। भाषा की परतन्त्रता ने देश की स्वतन्त्रता का अवमूल्यन कर दिया है। देश की कला की प्रगति भी तदनुरूप विदेशों से आक्रान्त हो गयी है।

कला के संबंध में गांधी जी की दृष्टि उत्तरोत्तर शुद्धता और पवित्रता के संस्कारों से बनती रही। उनका कहना है–

'ज्यों-ज्यों मैं अपने पार्थिव जीवन के अन्त पर आ रहा हूँ, मैं यह कह सकता हूँ कि जीवन की शुद्धता ही सबसे ऊँची और सच्ची कला है। कृत्रिम आवाज से सुन्दर से संगीत पैदा करने की कला तो बहुत लोग हासिल कर सकते हैं, लेकिन शुद्ध जीवन की एकरसता से उस संगीत को पैदा करने की कला, विरले ही प्राप्त करते हैं।'

गांधी जी की सौन्दर्य-दृष्टि मुखरता का निषेध करती है। उन्हें लगता है कि सौन्दर्य के आस्वाद में शब्द बाधक हो जाते हैं अतः मौन होकर ही सुन्दरता की सराहना ठीक रहती है। वाचलता हलकेपन से उपतजी है जो सौन्दर्य-ग्रहण में भी बाधक होने लगती है। व्यक्ति का मन एकान्त सौन्दर्य की भावना ही खो देता है। इसलिए गांधी जी ने कहा–

> "सौन्दर्य की तारीफ होनी ही चाहिए पर वह मूक अच्छी। और तेन त्यक्तेन भुंजी था। यह कहा जा सकता है कि जिसे आकाश का सौन्दर्य हर्ष नहीं पहुँचा सकता, उसे कोई चीज अच्छी नहीं लगती। मगर जो खुशी से पागल होकर नक्षत्र मंडल तक पहुँचने की सीढ़ी तैयार करने का प्रयत्न करें वे वेमान हैं।"
>
> –(म.डा. 16)

श्रेष्ठ कला की पहचान गांधी जी को उनके जीवन-दर्शन ने ही दी जिसमें कला स्वयं महत्व नहीं रखती। कला के स्तरों का बोध भी उनके मन में था पर जीवन का परिष्कार करने का संकल्प रखने वाला मनस्वी किसी छोटी चीज से संतुष्ट नहीं हो सकता। वे लिखते हैं–

> 'कला के लिए कला' साधने का दावा करने वाले भी असल में वैसा नहीं कर सकते| कला का जीवन में स्थान है। कला किसे कहा जाय, यह अलग सवाल है। मगर हम सब को जो रास्ता तय करना है उसमें कला, साहित्य वगैरह सिर्फ साधन हैं। वे ही जब साध्य बन जाते हैं, तब बन्धन बन कर मनुष्य को गिराते हैं।'
>
> (म.डा. 211)

यहां कई बातें ऐसी कह दी गयी है कि उनके आधार पर गांधी जी का कला-दर्शन परिकल्पित एवं निरूपित

किया जा सकता है। उनके विचार सर्वथा स्पष्ट है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कला के विषय में उनकी निम्नलिखित मान्यताएँ थी।

1. 'कला कला के लिए' कथन अव्यावहारिक है क्योंकि उसमें अन्तर्विरोध दिखायी देता है।
2. कला का जीवन में स्थान है पर कला समग्र जीवन नहीं है
3. कला वस्तुतः किसे कहा जाय यह प्रश्न अनुत्तरित है।
4. कला में साध्य-साधन विवेक का होना अत्यावश्यक है अन्यथा विवेकहीनता पतन का कारण बन जाती है।
5. कला की पूर्णता का प्रतीक है आकाश जिसमें सब कुछ समाहित रहता है।

इस अंतिम निष्कर्ष तक पहुँचने में गाधी जी का समस्त जीवन-दर्शन सामने आ जाता है निर्मलता, विशदता, भव्यता तथा गति का नियमन सब कुछ "आकाश" में देखा जा सकता है, केवल व्यक्ति के भीतर स्वच्छ सौन्दर्य-दृष्टि होनी चाहिए। "निरमल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा"।। तुलसी की यह चौपाई गांधी जी के सौन्दर्य-बोध की परिचायक है जिसमें साधानात्मक विकास की भूमि पर ही कला की मूल्यवता स्थापित की जा सकती है। वे लिखते हैं–

> 'जो इन्सान को, सदाचार में एक कदम आगे बढ़ाये और उसके आदर्श ऊँचे बनाये वह कला है। उसके सदाचार को गिराये वह कला नहीं बल्कि वीभत्सता है।'
>
> –(म.डा.282)

आकाश को देखने पर जिस अनन्तता का, नियमन का और भव्यता का ख्याल आता है

वह हमें शुद्ध करता है।

जिस तरह गांधी जी आकाश को देखते रहे होंगे उसमें निश्चय ही सौन्दर्य बोध के साथ उनका नैतिकता बोध भी अभिन्न रूप से समाहित रहा होगा। सारी सृष्टि आकाश से निकलती है और उसी में समा जाती है। लय-प्रलय का दृश्य जैसे आकाश देखता है वैसे ही गांधी जी ने मानव-जीवन को देखा था। सब कुछ धारण करने के बाद भी विशदता, निर्मलता और नियमन उसका स्वाभाव बना रहता है, यह विरूद्धधर्माश्रयता ही कला को संभव बनाती है तथा उसे आकर्षण भी प्रदान करती है। गांधीवाद कला के प्रति उदासीन रहकर भी चिन्तन के स्तर पर उससे जुड़ा होता है।

2.10.88 'गांधी दर्शन' से अनुप्रेरित।